

‘प्रश्न’ कहानी में दलित-नारी प्रश्न

सारांश

कोई भी ‘प्रश्न’ वादा नहीं होते और न ही व्यक्ति-प्रश्न होते बल्कि विश्व-प्रश्न, इतिहास-प्रश्न तथा मनुष्य मात्र के विकास के, स्वतंत्रता के, इंसान होने की हैसियत से जीने के प्रश्न होते हैं। तभी तो ये इतिहास प्रक्रिया में सम्मिलित होकर इतिहास की समस्या को अपनी समस्या बना लेते हैं और दलित व नारी के सदियों के संताप को परत-दर-परत उघाड़कर रख देते हैं। इतना ही नहीं ये प्रश्न दलित-नारी जीवन के “आश्रय के लिए नहीं, छिपने के लिए नहीं, पर उत्तर के लिए, एक प्रश्न के उत्तर के लिए! एक सवाल के जवाब के लिए, एक संतोष के लिए!” होते हैं। यह भी सच है कि अगर समाज का अतार्किक संविधान और बंधन, खोखले संस्कार और सीमाएं नहीं होते तो ये प्रश्न ही नहीं उठते। इसलिए सहृदय पाठक और साहित्यकार के मानस में इनके उत्तर विभिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न होंगे। फिर भी प्रयास है इंसान होने की हैसियत से जीने का।

मुख्य शब्द: मनुष्य, विकास, स्वतंत्रता और जीवन प्रस्तावना



लक्ष्मीकान्त चंदेला

सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,

शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, छिंदवाड़ा,
म.प्र.

‘प्रश्न’ मुक्तिबोध की शीर्षस्थ कहानियों में से एक है तथा ‘काठ का सपना’ कहानी संग्रह में संग्रहित है। कथा-तत्त्वों एवं रचना की दृष्टि से पूर्ण कहानी प्रतीत होती है जिसमें प्रारंभ से लेकर अंत तक प्रश्न-ही-प्रश्न हैं। ये प्रश्न हमें नयी चेतना, नया स्वर, नया बोध, नया इल्म प्रदान करते हैं। यह कहानी एक गंभीर प्रश्न से प्रारंभ होती है और युग के समक्ष एक प्रश्न छोड़कर समाप्त हो जाती है। रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में कहूँ तो- “प्रश्न यहां वादों का नहीं, प्रत्युत मनुष्य के सामूहिक विकास का है।”¹ सच में, कथाकार को विश्वास है कि पाठक इन प्रश्नों के उत्तर स्वयं खोजेंगे और मनुष्य के विकास का सामूहिक प्रयास होगा। ऐसी कला-दृष्टि मुक्तिबोध के अनुभव जगत् से प्रणीत हो विन्यस्त होती है तथा दलित-नारी से जुड़े प्रश्न पूरी प्रखरता से मुखर हो उठते हैं और पाठक को उन प्रश्नों तक लेकर जाते हैं जिनसे दलित और नारी सदियों से जूझ रहे हैं।

सुशीला की कच्ची उम्र में ही चालीस के आस-पास के उम्र वाले व्यक्ति से शादी हो जाती है जिनका एक होनहार बालक नरेन्द्र भी है जो अब तेरह साल का है। बालक नरेन्द्र के जन्म के समय सुशीला मात्र 16 वर्ष की थी। पूर्ण यौवन पर वक्त के आगे किसकी चलती है “और वह समय आया जहां जीवन की सड़क बल खाकर घूम गयी।”² तथा बीमारी के कारण सुशीला के पति की मृत्यु हो जाती है। इसी दरम्यान “पड़ोस के नम्र, शालीन ... स्वर्गीय पति के कोई लगते हैं”³ नवयुवक से मानवतामय उदारता हृदय को छूता हुआ संपर्क हो जाता है और जिसे मां के कहने पर नरेन्द्र काका कहता है। “वे कब एक-दूसरे की बांहों में आ गये इसका उनको स्वयं को पता नहीं चला।”⁴ इसकी चर्चा पूरे गाँव में थी। फिर क्या था नरेन्द्र का गाँव में जीवन जीना ‘लोहे का स्वाद लुहार से नहीं उस घोड़े से पूछो की तरह जिसके मुँह में है लगाम’ जैसा था। क्योंकि नरेन्द्र को “स्कूल के बच्चे उसे छेड़ते हैं, उसे तंग करते हैं, .. उसके मित्र भी उसे बेईमान समझने लगे हैं।” “क्या मेरा यह भी भाग्य है! तो फिर मुझे माता ही क्यों दी! ... भाग्य की ही परीक्षा है तो फिर यही सही!”⁵ और एक दिन नरेन्द्र वक्त के पहियों के साथ भाग्य की परीक्षा देते हुए महान कलाकार हो जाता है।

इस तरह कहानी की कथा-वस्तु साकार होती हुई दलित और नारी जीवन के शाश्वत सवालों को उठाती है। प्रश्न ऐसा है कि युग-युग का दुःख प्रकट होता है, पीर और पीड़ा अन्तर्गुथित होती हुई स्वाभाविक प्रश्न मानस में उठने लगते हैं। हां मगर दलित और नारी के प्रश्न आज भी प्रश्न बने हुए हैं। चाहे पात्र सुशीला (मां), सुशीला का पति, नरेन्द्र (बेटा) या नरेन्द्र के काका का हो। इनसे समूचे दलित और नारी जीवन का भीतरी संसार उघरता है। कहानी

के एक-एक प्रश्न जिंदगी के एक-एक लर को उनेरते हैं और उन लरों की ऐंठन के भीतर के भंजे हुए ऊनर-दूनर खोखले संस्कार-मान्यताएँ खुलते हैं। देखिए न, एक लर के उनेरने से पहला प्रश्न खुलता है जिसमें नरेन्द्र अपनी मां से कहता है—

‘सच कहोगी? उसने दृढ़ स्वर में पूछा।

सुशीला ने अधिक उद्विग्न होकर कह, क्या है?

बोल जल्दी।

नरेन्द्र ने धीरे-धीरे गोद में से अपना लाल मुंह निकाला और मां की ओर देखा। उसका वही, कुछ उद्विग्न पर स्मितमय, सुकोमल चेहरा! मानों अमृत वर्षा कर रही हो। आशा का स्वर उमड़ने लगा! तो वह मेरी ही माता रहेगी।

उसने फिर कहा, ‘सच कहोगी, सचमुच!

हां रे!

मां तुम पवित्र हो ? तुम पवित्र हो न?

सुशीला को कुछ समझ में नहीं आया, बोली, मानी?

नरेन्द्र ने विचित्र दृष्टि से देखा। और सुशीला का आकलनशील मुख स्तब्ध हो गया।⁶

‘अरे, यह लड़का क्या पूछ बैठा। कौन-से पुराने घाव की अधूरी चमड़ी उसने खींच ली? वह क्या जवाब दे जब कि वह स्वयं ही प्रश्न लायी है। यही तो है जिसका जवाब वह चाहती है दुनिया से; सबसे?’⁷ प्रश्न तो एक रस्सी की तरह ऐंठे हुए हैं मगर जब रस्सी की ऐंठन खुलती है तो खुलते हैं दलित-नारी जीवन के प्रश्न। जिसका जवाब सारी दुनिया से चाहते हैं जिनका उत्तर आज तक नहीं मिला और अगर दिया भी गया तो प्रश्न शेष ही रह जाता है। कहा भी जाता है कि आदमी के एक प्रश्न के चूक जाने से उसका इतिहास बदल जाता है। सुशीला का इतिहास क्यों बदला, उन्हीं के शब्दों में ‘यदि आज वे होते, चाहे जैसे भी हो, तो क्या इतना दुःख होता। कितना सुरक्षित होती वह ! मजाल होती किसी की कोई कुछ कह ले। उन्हीं तीस रुपये में वह अपनी गरीबी का सुख भोगती।

परन्तु विधि किसके इच्छानुसार चलता है?

जब सुख बदा ही नहीं है, तो कहां से मिलेगा!⁸

‘क्या यह उसके प्रश्न का जवाब था? वह सिपिट गया, टिटुर गया जैसे संसार में उसे स्थान नहीं है। और एक कोने में मुंह ढांपकर वह सिसकने लगा।⁹ या फिर सुशीला का पति दूर तक सोचकर कहा होगा कि ‘मुझे तुमसे विवाह नहीं करना था, तुमको एक सलोना युवक चाहिए था।’¹⁰ ‘और जब वह उनके (प्रेमी अर्थात् काका) विह्वल आलिंगन में बिंध गयी तो अचानक सुशीला को अपने पतिदेव का ख्याल आया। उनका स्नेहाकुल मुख कह रहा है, ‘तुमको सलोना युवक चाहिए था।’

उस वक्त सुशीला ने कहा था, ‘नहीं’ ‘नहीं’।

पर आज वह कह रही थी, ‘हां’, ‘हां’,। और वह अधिक गाढ़ होकर उन पर छा गयी। पति का ख्याल उसे फिर भी था।¹¹ यहां सुशीला की नैतिकता स्पष्टतः दिखाई देती है। पूरे नैतिक दायरे में अपने को रखकर अर्थात् जो नैतिकता के दायरे में अपने को रखता है वही

ऐसा कह सकता है। तो ‘फिर वह किस तरह अपवित्र हुई। यह भी कोई समझाये। उसकी शुद्ध सरल आत्मा में कैसे अपवित्रा आ लगी?

यह सुशीला का प्रश्न है ? कोई उत्तर दे सकता है? क्या वह सब हृदय का धागा जिसमें भाग्य के रंग बुने हुए हैं, अपवित्र हो गया? तो फिर पवित्र कौन है?’¹² इस संदर्भ में प्रसाद जी की उन पंक्तियों को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा जो उन्होंने कहा था ‘पवित्रता की माप मलिनता है’ जोकि सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक संदर्भों में पवित्रता की परिभाषा और मापदण्ड हो सकता है, सुशीला के प्रश्न का उत्तर नहीं।

मुक्तिबोध इस कहानी के माध्यम से प्रश्न ही नहीं उठाए बल्कि अपनी दिल की बात भी कहते हैं क्योंकि ये ‘प्रश्न’ व्यक्ति-प्रश्न नहीं, विश्व-प्रश्न हैं, इतिहास-प्रश्न हैं, मनुष्य मात्र का प्रश्न है। इस तरह ये प्रश्न इतिहास प्रक्रिया में सम्मिलित होकर इतिहास की समस्या को अपनी समस्या बना लेते हैं और दलित व नारी के सदियों के संताप को परत-दर-परत उघाड़कर रख देते हैं, इसलिए कि ‘‘मध्यमवर्गीय संस्कारों और सीमाओं से मुक्त होकर सर्वहारा-वर्ग से तादात्म्य होना चाहते थे।’’¹³ मानों हजारों आदमी उनके पीछे लगे हों, भाले लेकर, लाठी लेकर, बरछियां लेकर। वह हांफ रहा है, मानों लड़ते हुए हार रहा हो! वह घर भागना चाहता है, आश्रय के लिए नहीं, छिपने के लिए नहीं, पर उत्तर के लिए, एक प्रश्न के उत्तर के लिए! एक सवाल के जवाब के लिए, एक संतोष के लिए!¹⁴

उद्देश्य

इंसान तो इंसान है चाहे दलित, आदिवासी हो या नारी। ये नाम के इंसान हैं जो जीवन तो जीते हैं पर इंसान की तरह नहीं। समाज के अतार्किक संविधान और बंधन इन्हें यह आजादी नहीं देता। बस दलित और नारी इंसान होने की हैसियत से जीवन जी सके, यही मेरे शोध पत्र का उद्देश्य है।

महत्व

मुक्तिबोध की ‘प्रश्न’ कहानी जीवन जीने के महत्वपूर्ण सवालों के साथ उपस्थित होती है। सचमुच इसमें उठाए गए सवाल दलित और नारी जीवन के सदियों के संताप को उकेरते हैं। इतना ही नहीं इसका विशिष्ट महत्व यह है कि दलित और नारी के इंसान होकर जीने की आजादी की एक कोशिश है, साथ ही मनुष्य के विकास का सामूहिक प्रयास भी।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः ‘प्रश्न’ कहानी में उठाए गए सवाल शाश्वत हैं। अगर समाज का अतार्किक संविधान और बंधन, खोखले संस्कार और सीमाएं नहीं होते तो दलित और स्त्री इंसान होने की हैसियत से जी पाते। बस इसी के उत्तर के लिए, सवाल के जवाब के लिए, एक संतोष के लिए यह लघु प्रयास है। फलतः ‘प्रश्न’ कहानी के उत्तर भिन्न-भिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न होंगे किन्तु दलित और नारी इंसान होने की हैसियत से जी सकेंगे।

सारतः कहानी को पढ़ने के बाद पाठक के मन में भी प्रथम दृष्टया प्रश्न ही उत्पन्न होता है, ऐसा क्यों?

इसी मनोवृत्ति को दृष्टिगत रख मुक्तिबोध यह कहानी सृजित करते हैं ताकि पाठक दलित और नारी के शाश्वत सवालों के उत्तर खोज सके। संभवतः उत्तर की शृंखला में कहानी व्यक्ति और इतिहास से आगे मानव मात्र के विकास की परिचायक है तथा दलित-नारी के पवित्र-अपवित्र से परे जीवन के जीने की स्वतंत्रता से है। यह भी सच है कि अगर समाज का अतार्किक संविधान और बंधन, खोखले संस्कार और सीमाएं नहीं होते तो ये प्रश्न ही नहीं उठते। इसलिए उत्तर विभिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न होंगे।

पुनश्च 'एक सहृदय पाठक के प्रश्न और संवेदनशील हृदय मुक्तिबोध के प्रश्न में कोई अंतर नहीं है। बस, उत्तर की खोज में एक सार्थक प्रयास है। प्रयास है इंसान होने की हैसियत से जीने की।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामधारी सिंह दिनकर : साहित्य और समाज, लोक भारती प्रकाशन, 1ली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, पहला संस्करण, 2008, पृ. 38
2. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 105
3. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 105
4. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 106
5. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 98
6. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 101
7. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 102
8. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 104
9. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 102
10. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 103
11. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 106
12. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 107
13. नंदकिशोर नवल : मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण 1993, पृ. 10
14. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी - 5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 97